UNIT-5, SUB-UNIT-2

पूँजी-निर्माण की विभिन्न अवस्थाएँ

Part-III, Paper-V, (1)

(DIFFERENT STAGES OF CAPITAL FORMATION)

आधुनिक युग में द्रुतगति से पूँजी-निर्माण आर्थिक विकास की एक अति अनिवार्य शर्त है। किन्तु पूँजी का निर्माण एकाएक नहीं होता, यह एक लम्बी प्रक्रिया का परिणाम है। अविकसित तथा अर्द्ध-विकसित देशों में तो यह कार्य और भी कठिन है क्योंकि इन देशों की अविकसित स्थिति के कारण साधारणतया सम्पूर्ण उपलब्ध आय को देशवासी उपभोग में ही लगा देते हैं जिससे बचत कम या बिलकुल नहीं हो पाती है और बचत के अभाव में पूँजी का निर्माण बिल्कुल ही नहीं हो पाता जिससे इन देशों का आर्थिक विकास असम्भव सा हो जाता है। इन देशों में यदि वर्तमान उपभोग को कम करके राष्ट्रीय आय का एक अंश बचा लिया जाय और इसे उत्पादन एवं विकास के कार्यों में प्रयुक्त किया जाय तो पहले से अधिक बचत होगी। इस अतिरिक्त बचत को यदि निरंतर उत्पादन एवं-विकास के कार्यों में लगाया जाता रहे तो कुछ ही वर्षों में पर्याप्त मात्रा में पूँजी एकत्र हो जायेगी जिसका प्रयोग और अधिक पूँजी-निर्माण एवं विकास के लिए किया जा सकेगा। अत: स्पष्ट है कि पूँजी-निर्माण के तीन स्वतन्त्र परिवर्त्तों है। दूसरे शब्दों में, **पूँजी-निर्माण की प्रक्रिया में निम्नांकित चार अवस्थाएँ हैं—**

(1) बचत (Saving); (2) वित्तीय प्रक्रियाएँ (Financial Activities);

(3) बचतों का एकत्रीकरण (Mobilisation of Saving); तथा (4) बचतों का विनियोग (Investment of Saving)।

इसे निम्न तालिका द्वारा भी स्पष्ट किया जा सकता है—

पूँजी-निर्माण की अवस्थाएँ

बचत (Saving)	वित्तीय प्रक्रियाएँ (Financial Activities)	बचतों का एकत्रीकरण (Mobilization of Saving)	बचतों का विनियोग (Investment of Saving)

अब इनका निम्न विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है :—

1. **बचत** (Saving)— पूँजी बचत[2] का परिणाम है। प्रचलित आय एवं उपभोग के अन्तर को ही बचत कहा जाता है।[1] अपनी सम्पूर्ण वर्तमान आय को उपभोग की वस्तुओं पर व्यय नहीं करके इसका जो भाग बचा लिया जाता है उसे बचत कहते हैं। बचत का किसी देश के आर्थिक विकास में निर्णायक महत्व होता है। **प्रो० लीविस** (W. A. Lewis) के निम्नांकित कथन से यह स्पष्ट है : **"आर्थिक विकास के सिद्धांत की केन्द्रीय समस्या उस प्रक्रिया को कार्य रूप देना है जिसके द्वारा किसी देश को 5 प्रतिशत बचाने वाले देश से बदलकर 12 प्रतिशत बचाने वाले देश में परिवर्त्तित कर दिया जाता है।"** (The central problem in the theory of economic growth is to understand the process by which a community is converted from being a 5 p. c. to a 12 p. c. saver-with all the changes in attitudes, in institutions and in techniques which accompany this conversion) किन्तु अर्द्ध-विकसित देशों में प्रति-व्यक्ति आय बहुत ही कम होती है। इससे इन देशवासियों का जीवन-स्तर बहुत निम्न हो जाता है अतएव आर्थिक विकास के प्रयत्नों से इनकी आय में जो कुछ भी वृद्धि होती है उसका अधिकांश भाग वे उपभोग की वस्तुओं पर ही व्यय कर देते हैं जिससे बचत के लिए बहुत ही कम रकम रह पाती है। अतः ऐसे उपायों को अपनाना आवश्यक है जिनसे बचत में वृद्धि हो। यदि राष्ट्रीय आय में वृद्धि के लिए पूँजी-निर्माण की दर को बढाना है तो इसके लिए बचत की दर में वृद्धि भी अनिवार्य है। किन्तु विनियोग आंतरिक बचत से अधिक भी हो सकता है। समाज में किसी समय विनियोग के लिए उपलब्ध रकम के अन्तर्गत आंतरिक बचत के साथ-साथ विदेशी पूँजी के रूप में उपलब्ध साधन भी सम्मिलित रहते हैं।

1. "Changes in prices, differences in quality, shifts in ownership and use, the degree of depreciation, all these make it impossible to measure exactly the extent to which capital has increased over time. The estimates have to be accepted as only rough indications of the changes in magnitude."
2. "The term 'Saving" is defined as the accounting difference between current income and consumption."

बचत भी मुख्यतया निम्नांकित चार प्रकार की होती है :–

(क) ऐच्छिक आन्तरिक बचत (Voluntary internal Saving),

(ख) अनिवार्य बचत (Compulsory Saving),

(ग) घाटे की वित्त-व्यवस्था द्वारा बचत, तथा

(घ) बाह्य बचत (External Saving)।

(क) **ऐच्छिक आन्तरिक बचत** (Voluntary Internal Saving)— आन्तरिक बचत का एक बड़ा भाग देशवासियों द्वारा ऐच्छिक रूप से बचाने का परिणाम होता है। विकसित देशों में, वस्तुत:, इसी प्रकार की बचत की प्रधानता रहती है। किन्तु अविकसित तथा अर्द्ध-विकसित देशों में प्रति-व्यक्ति आय के बहुत कम होने के कारण अधिकांश देशवासियों के रहन-सहन का स्तर बहुत ही निम्न रहता है। इससे ये अपनी अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्त्ति करने में ही असमर्थ रहते हैं। अतएव विकास के परिणामस्वरूप इनकी आय में जो थोड़ी-बहुत वृद्धि होती भी है उसका अधिकांश भाग वे उपभोग पर ही व्यय कर देते हैं जिससे ऐच्छिक बचत कम अथवा कुछ भी नहीं होती। अतएव अर्द्ध-विकसित देशों में इस प्रकार के प्रयत्नों की आवश्यकता हैं जिससे लोगों की आय में पर्याप्त मात्रा में वृद्धि हो ताकि वे बचत कर सकें। साथ ही, समाज के धनी वर्ग के लोगों, जिनकी आय पहले से ही पर्याप्त है, को इस प्रकार की प्रेरणा दी जानी चाहिए जिससे वे अपनी आय को विलासिताओं पर व्यय न कर उसका अधिकांश भाग बचाएँ और इस बचत को विकास से सम्बंधित उत्पादक विनियोग के कार्यों में लगाएँ। अर्द्ध-विकसित देशों में ग्रामीण क्षेत्र की ही प्रधानता रहती है। अत: ग्रामीण क्षेत्रों में भी लोगों को बचत के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। इस उद्देश्य से ग्रामीण क्षेत्रों में सहकारी समितियों, पोस्ट ऑफिस बचत बैंकों, व्यावसायिक बैंकों की शाखा तथा ग्रामीण बैंकों की व्यवस्था की जानी चाहिए। इस सम्बन्ध में आवश्यकता इस बात की भी है कि ग्रामीण क्षेत्रों की बचत का उपयोग ग्रामीण क्षेत्रों में ही किया जाय। परन्तु ग्रामीण जनता में विश्वास उत्पन्न करने के लिए इस क्षेत्र में योग्य, कुशल एवं ईमानदार कर्मचारियों की प्रबल आवश्यकता है।

सारांश यह है कि ऐच्छिक बचत का अविकसित तथा अर्द्ध-विकसित देशों के आर्थिक विकास में बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान है। समुचित वातावरण के सृजन द्वारा इस प्रकार की बचत में पर्याप्त वृद्धि भी की जा सकती है। इस सम्बन्ध में **प्रो० लीविस** (Lewis) के इस कथन को सदा ध्यान में रखना होगा कि "कोई भी राष्ट्र ऐसा निर्धनन नहीं है कि यदि वह चाहे तो अपनी आय का 12 प्रतिशत भाग तक नहीं बचा सके। निर्धनता कभी युद्ध आरम्भ करने अथवा अपने साधनों को अन्य प्रकार से बर्बाद करने में बाधक नहीं सिद्ध हुई है।" (No nation is so poor that it could not save 12 P. C. of its national income if it wanted to. Poverty has never prevented nations from launching upon wars, or from wasting their substance in other ways.)[1] ऐसे राष्ट्र जिनकी कुल राष्ट्रीय आय का 40 प्रतिशत भाग समाज के केवल 10 प्रतिशत आय-प्राप्तिकर्त्ताओं, जो अधिकांशत: विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करते हैं, के द्वारा बर्बाद कर दिया जाता है को इस अर्थ में निर्धन नहीं कहा जा सकता। फिर भी, यह निर्विवाद है कि अल्पकाल में ऐच्छिक बचत में बहुत अधिक वृद्धि नहीं की जा सकती।

(ख) **अनिवार्य बचत** (Compulsory Saving)— संभव है कि अविकसित तथा अर्द्ध-विकसित देशों में सरकारी प्रयत्नों के बावजूद पर्याप्त मात्रा में ऐच्छिक बचत प्राप्त नहीं हो। ऐसी स्थिति में आर्थिक विकास के लिए पर्याप्त पूँजी प्राप्त करने के उद्देश्य से सरकार अनिवार्य बचत का भी सहारा ले सकती है। वास्तव में, सरकार भी कई प्रकार से बचत करने की स्थिति में होती है।[2] सर्वप्रथम तो, सरकार अनिवार्य बचत के उद्देश्य से विभिन्न प्रकार के नये-नये कर लगा सकती है तथा पुराने करों की दरों में भी वृद्धि कर सकती है। करों में वृद्धि करने से सरकारी आय में जो वृद्धि होती है उसका प्रयोग उत्पादक विनियोग के कार्यों में किया जा सकता है। साथ ही, इससे लोगों के पास क्रय-शक्ति कम हो जाएगी जिससे वे कम ही मात्रा में उपभोग पर व्यय करेंगे। इस प्रकार वे साधन जो पहले उपभोग के कार्य में लगाये जाते थे, अब पूँजी-निर्माण के कार्य में लगाये जायेगें। किन्तु नये कर लगाने तथा पुराने करों की मात्रा में वृद्धि के समय सरकार को अत्यन्त सावधानी तथा विवेक से कार्य लेना चाहिए अन्यथा इसका लोगों के कार्य करने तथा बचाने की इच्छा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है। **द्वितीयत:,** सरकार देशवासियों को अपनी आय का एक अंश बचाने के लिए भी बाध्य कर सकती हैं। उदाहरण के लिए, 1964-65 ई० के बजट में श्री मोरारजी देसाई ने भारत में एक अनिवार्य बचत योजना (Compulsory Saving Scheme) लागू किया था जिसके अन्तर्गत एक निश्चित मात्रा से अधिक आय वाले सभी व्यक्तियों को अपनी आय का एक निश्चित प्रतिशत भाग सरकार के पास अनिवार्य रूप से पाँच वर्षों के लिए जमा करना पड़ता था। आगे चलकर इस अनिवार्य बचत योजना को समाप्त कर दिया गया। पुन: सितम्बर, 1974 के एक अध्यादेश द्वारा भारत सरकार ने एक निश्चित मात्रा से अधिक आय वाले लोगों के लिए एक अनिवार्य बचत योजना लागू की किन्तु 1986 ई० इसे भी समाप्त कर दिया गया।

1. W. A. Lewis : Theory of Economic Growth.
2. W. A. Lewis : Theory of Economic Growth. P. 236.

इस प्रकार इन उपायों द्वारा सरकार बचत के कार्य में योगदान दे सकती है। सरकार द्वारा करारोपण तथा अनिवार्य बचत की योजनाओं के कार्यान्वयन से मुद्रा-स्फीति भी कम होती है क्योंकि सरकार जनता की क्रय-शक्ति के एक अंश को बाजार पहुँचने के पूर्व ही कर अथवा अनिवार्य बचत के रूप में ले लेती है। किन्तु जैसा कि पहले कहा जा चुका है इस तरीके में भी पर्याप्त सावधानी की आवश्यकता है।

(ग) **घाटे की वित्त-व्यवस्था** (Deficit Financing) अथवा **मुद्रा-प्रसार द्वारा बचत** –जब बचत के उपरोक्त दोनों साधनों से पर्याप्त मात्रा में पूँजी नहीं प्राप्त होती तो घाटे की वित्त-व्यवस्था की नीति को अपना कर भी सरकार पूँजी-निर्माण कर सकती है। घाटे की वित्त-व्यवस्था का तात्पर्य सरकार द्वारा अपनी आय से अधिक व्यय करना है। भारतीय योजना आयोग के अनुसार भी **"घाटे की वित्त-व्यवस्था का तात्पर्य बजट के घाटों को कुल राष्ट्रीय व्यय में वृद्धि करने के लिए प्रयोग में लाना है, इस प्रकार के घाटे चाहे आय खाते** (Revenue Account) **से सम्बन्धित हों या पूँजीगत खाते** (Capital Account) **से। अतः इस प्रकार की नीति को अपनाने का तात्पर्य यही होता है कि सरकार करों, सरकारी उद्यम के लाभों, जनता से प्राप्त कर्ज, जमा तथा निधियों और अन्य फुटकर साधनों के रूप में प्राप्त आय से अधिक मात्रा में व्यय करती है। सरकार बजट के घाटों की पूर्ति या तो अपने संचित शेषों** (Accumulated Balances) **को काम में लाकर या बैंकों से उधार लेकर करती है।** (सरकार मुख्यतः देश के केन्द्रीय बैंक से उधार लेकर ही पूँजी का निर्माण किया करती है।") [The term Deficit Financing is used to denote the direct addition to gross national expenditure through budget deficits, whether the deficits are of revenue or of capital account. The essence of such a policy lies, therefore, in Government spending in excess of the revenue it receives in the shape of taxes, earnings of state enterprises, loans from the publie deposits and funds, and other miscellaneous sources. The Goverment may meet the deficit either by running down its accumulated balances or by borrowing from the banking system (mainly from the Central Bank of the country) and thus creating money.] अविकसित तथा अर्द्ध-विकसित देशों में विकास की योजनाओं को कार्यान्वित करने में घाटे की वित्त-व्यवस्था पर पर्याप्त जोर दिया जाता है। उदाहरण के लिए, भारत की प्रथम पंचवर्षीय योजना में कुल 420 करोड़ रुपये, यानी प्रथम योजना के कुल वास्तविक व्यय का प्रायः 21 प्रतिशत भाग; द्वितीय पंचवर्षीय योजना में 948 करोड़ रुपये, यानी द्वितीय योजना के कुल वास्तविक व्यय का 20.8 प्रतिशत भाग; तृतीय योजना में 1133 करोड़ रुपये यानी तृतीय योजना के कुल वास्तविक व्यय का प्रायः 13 प्रतिशत भाग तथा चतुर्थ योजना काल में 2060 करोड़ रुपये, यानी चतुर्थ योजना के कुल व्यय का प्रायः 12 प्रतिशत भाग घाटे की वित्त-व्यवस्था के द्वारा प्राप्त किया गया था। इसी प्रकार पंचम पंचवर्षीय योजना में घाटे की वित्त-व्यवस्था के द्वारा 3560 करोड़ रुपये तथा छठी योजना में 15684 करोड़ रुपये की रकम प्राप्त की गयी थी।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (Seventh Five Year Plan) में घाटे की वित्तीय व्यवस्था के द्वारा 28356 करोड़ रुपये की रकम प्राप्त हुई थी तथा **आठवीं पंचवर्षीय योजना** (Eighth Plan) (1992-97) में घाटे की वित्त-व्यवस्था से 20000 करोड़ रुपये प्राप्त करने का आयोजन है। यह आठवीं योजना के कुल व्यय का प्रायः 5 प्रतिशत भाग है। यद्यपि कि वास्तविक रकम के आठवीं योजना की अवधि में इससे बहुत अधिक होने की संभावना है।

किन्तु घाटे की वित्त-व्यवस्था द्वारा पूँजी-निर्माण से मुद्रा-स्फीति के सृजन की संभावना बढ़ती है क्योंकि अविकसित देशों में उपभोग की क्षमता (Propensity to consume) उच्च होती है, कई प्रकार की बाजार-संबंधी अपूर्णताएँ पायी जाती हैं, तथा खाद्यान्नों की पूर्ति की लोच भी निम्न होती है। और चूँकि अविकसित तथा अर्द्ध-विकसित देशों में मुद्रा-स्फीति की संभावना अधिक पायी जाती है, अतः घाटे की वित्त-व्यवस्था से प्रेरित विनियोग से निर्धन देशों में अत्यधिक विकसित देशों की अपेक्षा उत्पादन में बहुत ही कम वृद्धि होती है। किन्तु मुद्रा-स्फीति भी बलात् बचत को प्राप्त करने का एक तरीका हो सकती है। अतः घाटे की वित्त-व्यवस्था की नीति को अपनाते समय इन सारी बातों पर ध्यान देना आवश्यक है।

(घ) **बाह्य बचत** (External Saving)— अविकसित एवं अर्द्ध-विकसित देशों को अपने विकास-कार्य में बहुत अधिक मात्रा में यन्त्रादि-पूँजीगत साधनों की भी आवश्यकता पड़ती है। इन देशों से प्रति वर्ष कच्चे पदार्थों तथा खनिज आदि का विदेशों को निर्यात भी किया जाता है। इससे इन्हें जो विदेशी मुद्रा-प्राप्त होती है उसे यदि बचाकर पूँजीगत कार्यों में व्यय किया जाय तो इससे विकास के कार्य में बहुत अधिक सहायता प्राप्त होगी। इस प्रकार निर्यात से प्राप्त विदेशी मुद्रा भी पूँजी-निर्माण के कार्य में सहयोग प्रदान कर सकती है। किन्तु इसके लिए सरकार को समुचित आयात-निर्यात नीति का अनुकरण करना अनिवार्य है। आयात-नियन्त्रण की नीति का उद्देश्य अनावश्यक उपभोक्ता वस्तुओं के आयात पर प्रतिबन्ध होना चाहिए। आयात में पूँजीगत वस्तुओं की ही प्रधानता होनी चाहिए क्योंकि इससे विकास के कार्य में गति प्राप्त होगी। इसी प्रकार निर्यात-सम्बन्धी नीति का उद्देश्य देश के निर्यात को प्रोत्साहित करना होना चाहिए। इस उद्देश्य से सरकार को निर्यात की वस्तुओं पर करों में छूट तथा आर्थिक सहायता आदि प्रदान करने की व्यवस्था की जानी चाहिए। साथ ही, देश से यथासम्भव निर्मित एवं अर्द्ध-निर्मित वस्तुओं के निर्यात को भी प्रोत्साहन देना चाहिए।

इस प्रकार समुचित आयात एवं निर्यात-नीति द्वारा सरकार विदेशी मुद्रा के रूप में बचत प्राप्त कर सकती है जिससे आर्थिक विकास के कार्य में [illegible] प्राप्त होगी। इसके अन्तर्गत कोटा पद्धिति, लाइसेंस की व्यवस्था तथा राज्य द्वारा व्यापार के माध्यम से विदेशी व्यापार की नीति को [illegible]-निर्माण के अनुकूल बनाया जा सकता है।

1. घाटे की वित्तीय व्यवस्था तथा आर्थिक विकास से इसके सम्बंध की विस्तारपूर्वक विवेचना आगे चलकर एक पृथक अध्याय में की गयी है।

(2) **पूँजी-निर्माण की द्वितीय अवस्था : वित्तीय प्रक्रिया** (The Second Stage of Capital formation : Financial Activity)— जब समाज में बचत के लिए आवश्यक परिस्थितियों का निर्माण हो जाता है तब उस बचत को विभिन्न वित्तीय प्रक्रियाओं द्वारा उचित मार्ग की ओर निर्देशित करने की आवश्यकता होती है। पूँजी-निर्माण की प्रक्रिया की यह द्वितीय महत्वपूर्ण अवस्था है। इसके अन्तर्गत समाज की बचत को एकत्र करने के लिए देश में बैंकिंग, बीमा कम्पनियों, विनियोगी ट्रस्टों जैसी वित्तीय संस्थाओं का एक जाल-सा बिछा होना आवश्यक है। ये संस्थाएँ समाज के विभिन्न वर्गों की बचतों को एकत्र कर इन्हें उचित विनियोक्ताओं के पास पहुँचायगी। अविकसित तथा अर्द्ध-विकसित देशों में सामान्यत : इस प्रकार की संस्थाओं का अभाव रहता है, किन्तु पूँजी-निर्माण के लिए बचत को प्रोत्साहित करने के उद्देश्य से इन संस्थाओं का देश में एक जाल-सा बिछा होना अनिवार्य है।

(3 & 4) **पूँजी-निर्माण की तृतीय तथा चतुर्थ अवस्था : बचतों का एकत्रीकरण तथा विनियोग** (The Third and Fourth Stages of Capital Formation : Mobilization of Savings and its investment) :— यह पूँजी-निर्माण की तृतीय तथा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अवस्था है। वास्तव में, केवल बचत को एकत्र करने से ही पूँजी-निर्माण की प्रक्रिया पूरी नहीं हो पाती इसके लिए देश में जोखिम वहन करने वाले योग्य तथा कुशल व्यापारियों के एक वर्ग की आवश्यकता होती है जो बचत को लाभदायक तरीके से विनियोग कर सके। पूँजी-निर्माण की प्रक्रिया में इस अवस्था का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि विनियोग पर ही उत्पादन निर्भर करता है और उत्पादन पर पूँजी-निर्माण। सामान्यत : यह सोचा जाता है कि अविकसित तथा अर्द्ध-विकसित देशों में पूँजी-निर्माण की प्रक्रिया में प्रमुख समस्या बचत की मात्रा को बढ़ाने की ही है क्योंकि एकत्र की गयी सम्पूर्ण बचत का सुगमतापूर्वक विनियोग किया जाता है। किन्तु हाल के अनुभव से यह स्पष्ट है कि विनियोग की उचित व्यवस्था भी इन देशों की एक प्रधान समस्या है। विश्व बैंक (The International Bank for Reconstruction and Development) के अनुसार भी वास्तविक कठिनाई कोषों की कमी की नहीं है, वरन् पर्याप्त मात्रा में ऐसी योजनाओं को तैयार करने की है जिनपर लाभदायक तरीके से विनियोग किया जा सके।

विकासशील देशों में विनियोग का कार्य किसानों, देशी एवं विदेशी साहसियों तथा सरकार के द्वारा किया जाता है। किन्तु, इस सम्बन्ध में सरकार की भूमिका का ही अधिक महत्त्व है। वास्तव में, सरकार निजी तथा राजकीय दोनों ही प्रकार के विनियोगों को अत्यधिक मात्रा में प्रभावित करती है। कृषि के क्षेत्र में विनियोग का कार्य किसानों द्वारा किया जाता है। किन्तु इस क्षेत्र में भी सरकार को सामाजिक ऊपरी-व्यय-सम्बन्धी पूँजी प्रदान करने के अतिरिक्त बड़ी-बड़ी सिंचाई तथा बाढ़ नियन्त्रण आदि की योजनाओं में विनियोग करना पड़ता है। किसान इन कार्यों को नहीं कर सकते। उद्योग-धन्धों के क्षेत्र में विनियोग का कार्य देशी तथा विदेशी निजी साहसियों द्वारा किया जाता है। इनमें से अधिकांश विकासशील देशों में आजकल विदेशी पूँजीपतियों को पूँजी लगाने तथा उद्योग-धन्धों को प्रारम्भ करने में कई प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इन्हें कोई उद्योग प्रारम्भ करने के पूर्व सरकार से आवश्यक अनुमति भी लेनी पड़ती है। देश के साहसी तथा उद्योगपति भी इस सम्बन्ध में बिल्कुल स्वतन्त्र नहीं होते। इन्हें भी सरकार से आवश्यक अनुमति लेनी पड़ती है। बड़े-बड़े उद्योगपति जो विदेशी पूँजी उधार लेना चाहते हैं, उन्हें भी सरकार से इस सम्बन्ध में आवश्यक अनुमति और अधिकांश हालतों में सरकारी गारण्टी की आवश्यकता पड़ती हैं। इससे स्पष्ट है कि निजी तथा सार्वजनिक दोनों क्षेत्रों में विनियोग को नियन्त्रित करने में सरकार का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है।

निष्कर्ष (Conclusion)— इस प्रकार पूँजी-निर्माण की उपरोक्त चार अलग-अलग अवस्थाएँ हैं। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि यद्यपि ये अवस्थाएँ अपरिवर्त्ती तथा एक दूसरे से स्वतन्त्र हैं, तथापि पूँजी-निर्माण के लिए इनकी महत्त्वपूर्ण रूप में आवश्यकता पड़ती है। उदाहरण के लिए, पूँजी-निर्माण के लिए सर्वप्रथम बचत करनी होती है क्योंकि पूँजी बचत का ही परिणाम है। इसके बाद इन बचतों को एकत्रित करने के लिए बैंक, बीमा कम्पनियों तथा इसी प्रकार की अन्य वित्तीय संस्थाओं की आवश्यकता होती है। ये संस्थाएँ इन छोटी-छोटी बचतों को एकत्र करती हैं। और अन्तत : इन बचतों का योग्य, कुशल एवं ईमानदार उपक्रमियों द्वारा लाभदायक तरीके से विनियोग किया जाना चाहिए। बचत के उचित तरीके से विनियोग करने से अर्थ-व्यवस्था का उचित विकास होगा। इससे लोगों की आय में वृद्धि होगी, आय बढ़ने से बचत अधिक होगी और इस प्रकार भविष्य में अर्थ-व्यवस्था के समुचित विकास के लिए और अधिक पूँजी प्राप्त होगी।